विचार संगम

भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

विचार संगम

भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :

पुष्पा शर्मा

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,

लोहाखान, अजमेर-305001

ई-मेल : bnbajmer@gmail.com

संस्करण

प्रथम 2025

ISBN : 978-81-993854-0-5

मूल्य - 400/-

रचना - विचार संगम-भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

26

वाल्मीकि रामायण के संदर्भ में पारिवारिक जीवन

आराधना माहेश्वरी
सहायक आचार्य (समाज विज्ञान विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय संस्कृति में मातृत्व को नारी जीवन का सर्वोच्च आदर्श और पूर्णता का प्रतीक माना गया है। वाल्मीकि रामायण में यह आदर्श स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। वैदिक एवं उत्तरवैदिक काल से ही भारतीय समाज ने माता को देवतुल्य स्थान प्रदान किया है, और परिवारिक जीवन की मर्यादा में उसकी भूमिका के बिना समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

मातृपद की महत्ता

विवाहोपरांत स्त्री के जीवन का वास्तविक विकास मातृत्व प्राप्त होने पर ही माना गया। रामायण काल में माता को केवल एक पारिवारिक भूमिका के रूप में नहीं, बल्कि संस्कार, प्रेम और त्याग की मूर्ति के रूप में देखा गया। माता का स्थान पिता, गुरु और देवता से भी श्रेष्ठ माना गया है।

ऋग्वेद में कहा गया है— 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' (ऋग्वेद 10.12.1)

अर्थात् माता पृथ्वी के समान है, जो सबका पालन करती है।

इसी भावना का विस्तार रामायण में मिलता है, जहाँ माता कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी जैसी माताओं के माध्यम से मातृत्व के विभिन्न आयामों का चित्रण हुआ है। श्रीराम की माताओं ने न केवल अपने पुत्रों के प्रति, बल्कि राज्य और धर्म के प्रति भी निष्ठा दिखाई।

धर्मशास्त्रों में माता को देवतुल्य बताया गया है। मनुस्मृति में कहा गया है—

आचार्याय प्रदेयां हि माता पितरौ तथा। तयोर्वृत्तिर्हि देवानां यथैषामेव नान्यथा॥ (मनुस्मृति 2/145)

अर्थात माता-पिता की सेवा देवताओं की सेवा के समान है।

रामायण के अनुसार भी माता का स्थान सर्वोपरि है। श्रीराम अपने पिता दशरथ के आदेश को भले ही स्वीकार करते हैं, परंतु वे अपनी माता कौशल्या के प्रति अपार श्रद्धा रखते हैं। माता से विदा लेते समय उनकी वाणी मातृभक्ति की साक्षात झलक देती है।

वाल्मीकि रामायण में यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित है कि स्त्री का सर्वोच्च धर्म

मातृत्व है। सन्तानोत्पत्ति को केवल जैविक कर्तव्य नहीं, बल्कि पितृ ऋण से मुक्ति का साधन माना गया है। रामायण में कहा गया है कि सन्तान का जन्म पितरों के उद्धार, वंश की रक्षा और धर्म की निरंतरता के लिए आवश्यक है।

मनु ने भी नारी का परम कर्तव्य सन्तानोत्पत्ति को बताया है—

सन्तानोत्पत्तिरेवैषा स्त्रीणां धर्मः सनातनः।

रामायण में 'स्त्रियों का पुत्रवती सफला दारा' होना आवश्यक माना गया है। पुत्रवती नारी ही सफल कहलाती है क्योंकि वही वंश-वृद्धि का माध्यम बनती है।

वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि पुत्र का जन्म न केवल पारिवारिक आनन्द का कारण है, बल्कि धार्मिक दृष्टि से भी आवश्यक है। पुत्र को 'पितृपथ उद्धारक' कहा गया है। माता द्वारा ऐसे पुत्र को जन्म देना उसके जीवन का सर्वोच्च गौरव माना गया।

सीता का राम के प्रति यह कथन इस भाव को प्रकट करता है कि—

'पुत्र जन्म से ही स्त्री का जीवन पूर्णता को प्राप्त करता है, क्योंकि वही पति के कुल को आगे बढ़ाता है।'

भारतीय विचारधारा में माता केवल जननी नहीं, अपितु धात्री (पालन करने वाली) और संस्कारदाता भी है। रामायण की माताएँ केवल अपने पुत्रों को जन्म ही नहीं देतीं, बल्कि उन्हें धर्म, त्याग, मर्यादा और आदर्श का संस्कार भी देती हैं। कौशल्या का स्नेह, सुमित्रा की नीति-बुद्धि, और कैकेयी का जटिल लेकिन धर्मपरायण स्वभाव मातृत्व की विविध छवियों को उजागर करता है।

रामायण में यह भी उल्लेख है कि पुत्र प्रसव करके पत्नी वास्तव में अपने पति को ही पुनर्जन्म देती है, अर्थात् पत्नी मातृत्व के माध्यम से पति की जीवन-रेखा को अमर बनाती है। इसीलिए उसे धात्री और जननी कहा गया है।

संतान के व्यक्तित्व निर्माण में माता का योगदान

भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में माता को सन्तान के प्रथम गुरु का पद प्राप्त है। वाल्मीकि रामायण सहित प्राचीन साहित्य में यह स्पष्ट किया गया है कि मानव-जीवन के निर्माण में माता का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। जन्म से लेकर संस्कारों की स्थापना तक माता ही वह आधार है, जिस पर सन्तान के व्यक्तित्व का संपूर्ण ढाँचा खड़ा होता है।

जन्म से पूर्व और पश्चात् दोनों अवस्थाओं में माता का स्वभाव, व्यवहार, भावनाएँ तथा संस्कार सन्तान पर गहरा प्रभाव डालते हैं। इसलिए प्राचीन भारतीय विचारधारा में कहा गया कि —

'यथा माता तथा पुत्रः'

अर्थात पुत्र का स्वभाव प्रायः माता के स्वभाव से निर्मित होता है।

रामायण में श्रीराम के व्यक्तित्व की गरिमा में माता कौशल्या के आदर्श चरित्र,

स्नेह और धर्मनिष्ठा का विशेष योगदान उल्लेखनीय है। इसी प्रकार लक्ष्मण में सुमित्रा की नीति-बुद्धि और त्यागभाव प्रतिबिंबित होते हैं।

प्राचीन मत के अनुसार शारीरिक दृष्टि से भी सन्तान की उत्पत्ति में माता का ही प्रमुख योगदान माना गया है। पिता को निमित्त मात्र कहा गया —

'जननी जन्मदात्री च धात्री च' अर्थात माता जन्म देने वाली और पालन करने वाली है।

इसलिए योग्य सन्तान की उपलब्धि का श्रेय पिता की अपेक्षा माता को अधिक दिया गया। यह भी विश्वास था कि — कन्या अपनी माता के गुणों को अधिक ग्रहण करती है, पुत्र पिता की अपेक्षा माता से अधिक प्रभावित होता है। प्रकृति के इस नियम को चरित्र एवं व्यवहार में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

प्रथम शिक्षा — मातृभाषा, मातृसंस्कार और मातृस्नेह से ही प्रारम्भ होती है। वाल्मीकि रामायण में सीता ने लव-कुश को बाल्यावस्था में ही धर्म, शौर्य, विनय, सत्य और कर्तव्यनिष्ठा के संस्कार दिए। यह दर्शाता है कि माताएँ केवल शरीर ही नहीं पालतीं, बल्कि सन्तान के नैतिक और आध्यात्मिक व्यक्तित्व का भी निर्माण करती हैं।

विकास मनोविज्ञान के अनुसार, बच्चे की भावनात्मक सुरक्षा और आत्मविश्वास का आधार माता के स्नेह से निर्मित होता है। रामायण में माताओं का वात्सल्य — राम के धैर्य, भरत की वफादारी, लक्ष्मण के त्याग जैसे गुणों के पीछे प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करता है।

माता समाज में आचरण की प्रथम गुरु होती है। रामायण में यह स्पष्ट है कि माता कौशल्या धर्मपालन की प्रेरक, सुमित्रा आदर्श त्याग की मार्गदर्शिका, सीता सहिष्णुता और मर्यादा की प्रतिमूर्ति के रूप में सन्तान को समाजोपयोगी आदर्शों की ओर अग्रसर करती हैं।

माता सर्वश्रेष्ठ गुरु

भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान अत्यंत ऊँचा माना गया है, परंतु वाल्मीकि रामायण में माता को सर्वश्रेष्ठ गुरु कहा गया है। कारण यह है कि माता ही बालक की प्रथम शिक्षिका होती है। उसकी गोद ही सन्तान का पहला विद्यालय है, जहाँ वह प्रेम, अनुशासन और धर्म का पहला पाठ सीखता है। माता सन्तान के हित के लिए सदैव सजग रहती है और उसे औचित्य-अनौचित्य का ज्ञान कराती है।

रामायण काल में तीन गुरुओं — आचार्य, पिता और माता का उल्लेख है, जिनमें माता को सर्वोपरि माना गया।

कौशल्या ने राम के वनगमन का प्रारंभ में विरोध किया, किन्तु धर्मस्मरण होने पर उन्होंने शुभ कार्य करके राम को विदा किया।

सुमित्रा ने लक्ष्मण को राम की सेवा, त्याग और धर्मपालन का उपदेश दिया।

उनके शब्दों से लक्ष्मण के व्यक्तित्व में नीति और वीरता का संयोग दिखाई देता है।

कैकसी, रावण की माता, ने भी उसे वैभव प्राप्त करने की प्रेरणा दी तथा बाद में सीता को लौटाकर राम से संधि का उपदेश दिया, परंतु रावण ने अवहेलना की और विनाश को प्राप्त हुआ।

माताएँ पुत्रियों को भी विवाह से पूर्व गृह-धर्म और मर्यादा का उपदेश देती थीं। माता सन्तान के पालन, संस्कार और कल्याण की प्रमुख आधार होती थी।

मधुर व्यवहार

वाल्मीकि रामायण के पारिवारिक जीवन में मधुर व्यवहार और परस्पर प्रेम का विशेष महत्व है। रामायण की माताएँ — कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा एक-दूसरे के पुत्रों से अपने पुत्रों जैसा स्नेह रखती थीं।

कैकेयी प्रारंभ में राम को अपने पुत्र भरत की तरह ही मानती थीं। राम के अभिषेक का समाचार सुनकर वे अत्यंत प्रसन्न हुईं और मंथरा को यह शुभ समाचार देने पर आभूषण उपहार में दिया। यह उनके स्नेहिल और उदार स्वभाव का प्रमाण है।

कौशल्या ने भी भरत के प्रति मातृवत् प्रेम दिखाया। जब भरत ननिहाल से लौटे, तो कौशल्या ने उन्हें बड़े स्नेह से आलिंगन कर स्वागत किया। बाद में जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि भरत राम के वनों में जटा धारण कर गए हैं, तो वे अत्यंत दुखी और चिंतित हो उठीं। यह उनकी गहन मातृभावना का प्रतीक है।

सुमित्रा का व्यवहार भी अत्यंत मधुर और समभावपूर्ण था। वे अपनी सपत्नी के पुत्रों से भी अपने पुत्रों जैसा प्रेम करती थीं। इसी स्नेह के कारण उन्होंने अपने दोनों पुत्र — लक्ष्मण और शत्रुघ्न को क्रमशः कौशल्या और कैकेयी के पुत्रों की सेवा में रखा।

पुत्र का माता के प्रति कर्तव्य एवं उसका फल

वाल्मीकि रामायण के अनुसार माता को प्रत्यक्ष देवता माना गया है। पुत्र के लिए माता की सेवा करना केवल कर्तव्य ही नहीं, बल्कि सर्वोच्च धर्म था। भारतीय संस्कृति में यह विश्वास था कि माता, पिता और गुरु की आराधना करने से मनुष्य तीनों लोकों की आराधना कर लेता है। पृथ्वी पर इनके समान कोई देवता नहीं है।

माता की सेवा को सबसे श्रेष्ठ कर्म माना गया है। यह कहा गया है कि — 'सत्य, दान, तप, मान और यश इन सब से बढ़कर मातृसेवा का फल है।'

जो पुत्र अपनी माता की सेवा में तत्पर रहता है, उसे जीवन में सुख, समृद्धि, विद्या, यश और पुत्र-प्राप्ति जैसे सभी मंगल फल प्राप्त होते हैं। रामायण में यह भाव स्पष्ट है कि मातृसेवा से स्वर्ग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है।

धार्मिक मान्यता थी कि माता-पिता की सेवा करने वाला पुत्र न केवल इस लोक में सुखी रहता है, बल्कि मृत्यु के बाद देवलोक, गन्धर्वलोक, ब्रह्मलोक और

गोलोक तक की प्राप्ति करता है।

कथाओं में वर्णित है कि एक अंध तपस्वी दंपत्ति के पुत्र ने केवल माता-पिता की निस्वार्थ सेवा के बल पर स्वर्ग प्राप्त किया। इसी प्रकार कश्यप मुनि ने नियमपूर्वक मातृसेवा करके स्वर्गलोक प्राप्त किया था।

ऐसी मान्यता थी कि जो पुत्र माता-पिता की सेवा करता है, वह दीर्घायु और चिरंजीवी होता है। उसका जीवन पुण्य और यश से परिपूर्ण होता है। माता की प्रसन्नता को परम वरदान माना गया है, क्योंकि उसकी कृपा से ही पुत्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करता है।

माता की अवज्ञा दुष्परिणाम

वाल्मीकि रामायण के अनुसार माता की आज्ञा का पालन पुत्र का परम धर्म था। जो पुत्र माता की सेवा नहीं करता या उसकी आज्ञा की अवहेलना करता, उसे जीवन में भयंकर दुष्परिणाम भोगने पड़ते थे।

माता की अवज्ञा करने वाले व्यक्ति की कीर्ति, सम्पत्ति और यश नष्ट हो जाते थे। ऐसे पुत्र को मृत्यु के बाद यमलोक में यातनाएँ सहनी पड़ती थीं और उसे पुनर्जन्म के चक्र में पड़ना पड़ता था।

इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण रावण है। जब उसकी माता कैकसी ने उसे सीता को लौटाकर राम से संधि करने की सलाह दी, तब रावण ने माता के इस उपदेश की अवहेलना की। परिणामस्वरूप उसे पराजय और मृत्यु का सामना करना पड़ा।

माता के प्रति प्रेम व आदर भाव

प्राचीन काल में पुत्र अपनी माता के प्रति अत्यंत आदर, प्रेम और श्रद्धा रखते थे। वे प्रतिदिन माता के चरण स्पर्श करते, यात्रा पर जाने या लौटने पर उन्हें प्रणाम करते और उनकी परिक्रमा कर आशीर्वाद लेते थे। युद्ध में जाने से पूर्व भी पुत्र अपनी माता की आज्ञा लेकर ही प्रस्थान करते थे।

राम जैसे पितृप्रधान कुल के आदर्श पुत्र ने वनगमन के समय अपनी दुखी माता के प्रति गहरा स्नेह और करुणा प्रकट की। उन्होंने भरत को अपनी अनुपस्थिति में माताओं की सेवा व सुख-सुविधा का ध्यान रखने को कहा। राम का कहना था कि माता ने संतान के लिए जो कष्ट सहे हैं, उनका प्रतिदान जीवन भर नहीं चुकाया जा सकता।

वनवास के समय राम अपनी माता को स्मरण कर स्वयं को दोष देते हैं कि जिन माताओं ने दु:ख सहकर उनका पालन किया, अब उन्हें वे सुख नहीं दे पा रहे हैं। वे कहते हैं — 'कोई भी माता मुझ जैसा पुत्र न जन्मे जो अपनी माता को दु:ख दे।'

रामायण में यह भी स्पष्ट है कि माता के प्रति अज्ञानवश भी अपमान या निंदा करना महापाप माना गया है। पुत्र के राज्य या यश प्राप्त करने पर माता को समाज में

विशेष आदरणीय स्थान प्राप्त होता था।

रावण ने भी अपनी माता को वैभवयुक्त देखने की इच्छा पूर्ण करने का संकल्प लेकर उसे पूरा किया। इसी प्रकार राम ने वनवास का आदेश मिलने पर भी अपनी माता से आज्ञा लेकर ही प्रस्थान किया और उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया।

माता पिता दोनों समान आदरणीय थे

रामायण काल में माता और पिता दोनों को समान रूप से आदरणीय माना गया है। दोनों ही पुत्र के लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार उत्तम भोजन, वस्त्र और शयन की व्यवस्था करते थे। पुत्र का परम धर्म था कि वह माता-पिता दोनों की सेवा करे, क्योंकि उनकी सेवा से मनुष्य का दुर्भाग्य सौभाग्य में परिवर्तित हो जाता था।

माता-पिता को प्रत्यक्ष देवता और गुरु समझा जाता था। उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना पुत्र के लिए असम्भव माना गया था, क्योंकि उनके आदेश का पालन ही पुत्र का सर्वोच्च कर्तव्य और धर्म था।

पिता की आज्ञा सर्वोपरि

रामायणकालीन पितृप्रधान समाज में पिता का स्थान अत्यंत ऊँचा था। यद्यपि माता और पिता दोनों ही समान आदरणीय माने गए, फिर भी पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में पिता की आज्ञा सर्वोपरि मानी जाती थी।

राम ने पिता दशरथ के वनवास आदेश को धर्म और कुल परंपरा का पालन मानते हुए पूर्ण निष्ठा से स्वीकार किया। उन्होंने माता कौशल्या के प्रेम के बावजूद पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। यह उनकी पितृभक्ति और मर्यादा का प्रमाण था।

सगर के पुत्रों और परशुराम के उदाहरण भी दिखाते हैं कि पिता की आज्ञा पालन को सर्वोच्च धर्म माना जाता था। अत: रामायण काल में माता-पिता दोनों पूजनीय थे, किंतु पिता की आज्ञा को सर्वोपरि धर्म का स्थान प्राप्त था।

भाई-बहन का परस्पर संबंध

रामायण में भाई-बहन के संबंधों का उल्लेख यद्यपि बहुत कम मिलता है, तथापि जहाँ भी वर्णन है, वहाँ उनका संबंध अत्यंत मधुर, स्नेहपूर्ण और उत्तरदायित्वपूर्ण दिखाई देता है। भाई अपनी बहन के सम्मान और सुरक्षा का ध्यान रखता था, जबकि बहन अपने भाई के प्रति स्नेह और शुभकामनाओं से ओतप्रोत रहती थी।

भाई-बहन का प्रेम

रामायण काल में भाई-बहन का संबंध अत्यंत स्नेहपूर्ण था। भाई अपनी बहन से गहरा प्रेम करते थे। विश्वामित्र का अपनी ज्येष्ठ भगिनी सत्यवती (ऋचीक मुनि की पत्नी) के प्रति प्रेम इसका उदाहरण है। उनकी मृत्यु के पश्चात विश्वामित्र ने कौशिकी नदी के तट पर आश्रम बनाकर वहीं निवास किया, जो उनके गहन भगिनी-प्रेम का प्रतीक है।

बहिन के विवाह का उत्तरदायित्व

रामायण काल में बहन के विवाह की जिम्मेदारी भाई पर होती थी। वह अपने विवाह से पहले बहन का विवाह कर देना अपना धर्म और कर्तव्य समझता था। रावण ने अपनी बहन शूर्पणखा का विवाह दानवराज विद्युज्जिह्व से इसी भावना से किया।

बहन का उचित समय पर विवाह न कराना पाप का कारण माना जाता था। रावण ने अपनी मौसेरी बहन कुम्मीनसी का विवाह न करने के कारण उसके अपहरण का दुखद परिणाम भोगा। इससे स्पष्ट है कि बहन के विवाह का उत्तरदायित्व निभाना भाई का परम कर्तव्य था।

बहन के पुत्र पर विशेष स्नेह

रामायण काल में भाई अपनी बहन के पुत्र से विशेष स्नेह रखते थे। वे उसकी कुशलता की जानकारी लेते और उसके विवाह जैसे पारिवारिक कार्यों में सम्मिलित होते थे। यह स्नेह भाई-बहन के गहरे पारिवारिक संबंध का प्रतीक था।

स्नेहपूर्ण व्यवहार

बहनों के बीच भी आपसी प्रेम और सौहार्दपूर्ण संबंध विद्यमान थे। जो सपत्नियाँ आपस में प्रेमपूर्वक रहती थीं, उन्हें बहनों समान स्नेहिल कहा जाता था। इसी प्रेम के कारण सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति — इन चारों बहनों का विवाह दशरथ के चारों पुत्रों से हुआ।

कभी-कभी एक ही पति से भी कई बहनों का विवाह होता था, जैसे कुशनाम की सौ कन्याओं का ब्रह्मदत्त से तथा प्रजापति दक्ष की आठ कन्याओं का कश्यप ऋषि से। यह उस युग में पारिवारिक एकता और स्नेह की गहराई को दर्शाता है।

बहिन का पुत्र निजपुत्रवत्

रामायण काल में बहनों के बीच गहरा स्नेह और विश्वास विद्यमान था। बहन के पुत्र को अपने पुत्र के समान माना जाता था। देवी गंगा ने अपनी बहन उमा (पार्वती) के पुत्र का पालन-पोषण अपने पुत्र की तरह किया, जिससे दोनों के बीच अटूट प्रेम और विश्वास का परिचय मिलता है।

अतः रामायण काल में बहनों के संबंध सदैव प्रेमपूर्ण और सौहार्दपूर्ण रहे; भगिनी-कलह के उदाहरण कहीं नहीं मिलते।

सारतः वाल्मीकि रामायण के अनुसार पारिवारिक जीवन में माता, पिता, भाई, बहन सभी के संबंध स्नेह, श्रद्धा और कर्तव्यभावना पर आधारित थे। माता को सर्वोच्च आदर, पिता की आज्ञा को धर्म, तथा भाई-बहन के संबंधों को प्रेम और उत्तरदायित्व का प्रतीक माना गया। परिवार में एकता, त्याग और परस्पर सम्मान की भावना विद्यमान थी, जिससे रामायण काल का आदर्श पारिवारिक जीवन समाज के लिए प्रेरणा बना।